दिल्ली उच्च न्यायालय: नई दिल्ली

आरक्षित तिथि: 14.07.2009

निर्णय की तिथि: 10.09.2009

सि.वि.(मु.) सं. 641/2009

पुनीता साहनी .....याचिकाकर्ता

द्वारा: सुश्री अरुणा मेहता, अधिवक्ता

बनाम

कैलाश सेठी .....प्रत्यर्थी

द्वारा: कोई नहीं

कोरमः

माननीय न्यायमूर्ति श्री विपिन सांघी

1. क्या स्थानीय समाचार पत्रों के संवाददाताओं को निर्णय देखने की अनुमति दी जा सकती है? नहीं

2. रिपोर्टर को भेजा जाना है या नहीं? हां

3. क्या निर्णय को डाइजेस्ट में प्रकाशित किया जाना चाहिए? हां

निर्णय

न्या. विपिन सांघी

1. याचिकाकर्ता ने सुश्री कावेरी बवेजा, अतिरिक्त किराया नियंत्रक, दिल्ली द्वारा ई-590/06/98 दिनांक 26.04.2008 में पारित आदेश को आक्षेप करने के लिए वर्तमान याचिका को प्राथमिकता दी है जिससे दिल्ली किराया नियंत्रण अधिनियम की धारा 15 (7) के तहत याचिकाकर्ता-किरायेदार का प्रतिवाद समाप्त हो गया है, साथ ही श्री राकेश कपूर, अतिरिक्त किराया नियंत्रण न्यायाधिकरण (पश्चिम) द्वारा 23.03.2009 को आर.सी.ए. सं. 02/09/08 में पारित अपीलीय आदेश में याचिकाकर्ता की अपील को पहले आदेश से खारिज कर दिया गया।

2. प्रत्यर्थी-मकान मालिक ने याचिकाकर्ता के खिलाफ दिल्ली किराया नियंत्रण अधिनियम की धारा 14(1)(ख) और 14(1)(ज) के तहत बेदखली की कार्यवाही शुरू की थी। उक्त अधिनियम की धारा 15(2) के तहत 25.04.1994 को एक आदेश पारित किया गया था, जिसके तहत याचिकाकर्ता को, अन्य बातों के साथ-साथ प्रत्येक अगले अंग्रेजी कैलेंडर माह की 15 तारीख तक 2,000/- रुपये प्रति माह किराए का भुगतान या जमा करने का निर्देश दिया गया था।

3. प्रत्यर्थी ने अधिनियम की धारा 15(7) के तहत एक आवेदन दायर किया कि याचिकाकर्ता द्वारा जून, जुलाई और अगस्त, 2006 के महीनों के लिए किराया जमा करने या भुगतान करने में विफलता के कारण याचिकाकर्ता के बचाव को रद्द कर दिया जाए। इस आवेदन को दायर किए जाने के बाद, याचिकाकर्ता ने जून, जुलाई और अगस्त, 2006 के महीनों के लिए किराया जमा करने की

अनुमति लेने के लिए एक आवेदन दायर किया। इन दोनों आवेदनों पर विद्वान अति.कि.नि. द्वारा उपरोक्त आक्षेपित आदेश के अनुसार विचार किया गया और निपटारा किया गया। जबकि धारा 15(7) के तहत आवेदन की अनुमति दी गई थी, उक्त अवधि के लिए किराया जमा करने के याचिकाकर्ता के आवेदन को खारिज कर दिया गया था। विद्वान अतिरिक्त आर.सी.टी. ने विद्वान अति.कि.नि. द्वारा पारित आदेश को बरकरार रखा है।

4. माना जाता है कि उपरोक्त अवधि के लिए किराया 25.04.1994 दिनांकित आदेश के निर्देशानुसार जमा नहीं किया गया था। किराया जमा न करने पर विद्वान अति.कि.नि. के समक्ष याचिकाकर्ता द्वारा यह रुख अपनाया गया कि किराया अधिवक्ता श्री संजीव मेहता के एक क्लर्क, नाम रवि, को दिया गया था। हालाँकि, रवि ने धोखाधड़ी की और तीन महीने तक किराया जमा नहीं किया। यह कहा गया था कि रवि दिल्ली के वजीरपुर में एक झुग्गी समूह क्षेत्र में रहता था। आगे कहा गया कि क्लर्क द्वारा प्रदान की गई रसीद अवैध थी और याचिकाकर्ता को पता नहीं था कि उक्त तीन महीने का किराया जमा नहीं किया गया था। याचिकाकर्ता की ओर से किराया जमा करने में हुई देरी को माफ़ करने का अनुरोध किया गया था। दूसरी ओर, प्रत्यर्थी ने याचिकाकर्ता द्वारा स्थापित कहानी को गलत बताते हुए उसे चुनौती दी। यह तर्क दिया गया था कि उक्त क्लर्क के खिलाफ कोई कार्रवाई नहीं की गई थी, न ही याचिकाकर्ता या उसके अधिवक्ता द्वारा उसके खिलाफ कोई शिकायत दर्ज की गई थी। इन तीन महीनों के लिए किराया जमा नहीं करने में याचिकाकर्ता का आचरण भी किराया जमा करने में पिछले कई चूक के अनुरूप था।

5. विद्वान अति.कि.नि. ने धारा 15(7) के तहत आदेश पारित करते हुए इस तथ्य को ध्यान में रखा कि रसीद की तथाकथित अवैध प्रति, जिसे क्लर्क रवि द्वारा प्रस्तुत किया गया था, को भी रिकॉर्ड में नहीं रखा गया था। चूक अवधि के लिए किराया जमा करने की अनुमति मांगने वाले आवेदन को प्रत्यर्थी द्वारा अधिनियम की धारा 15(7) के तहत आवेदन दायर करने के बाद ही स्थानांतरित किया गया था। न्यायालय में पहले जमा की गई राशि के संबंधित रिकॉर्ड से पता चलता है कि जमा राशि याचिकाकर्ता द्वारा स्वयं की गई थी, न कि क्लर्क रवि के माध्यम से। न्यायालय के लिए यह विश्वास करना मुश्किल हो गया कि केवल जून, जुलाई और अगस्त, 2006 के महीनों का किराया ही जमा करने के लिए अधिवक्ता के क्लर्क को क्यों दिया गया था, जबकि अन्य अवधियों का किराया स्वयं याचिकाकर्ता द्वारा जमा किया गया था। आवेदन के समर्थन में याचिकाकर्ता के अधिवक्ता का कोई शपथ पत्र दायर नहीं किया गया था। न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि यह दिखाने के लिए कुछ भी नहीं था कि रवि नाम का एक क्लर्क याचिकाकर्ता के अधिवक्ता के पद पर कार्यरत था।

6. न्यायालय ने याचिकाकर्ता के पहले के आचरण की भी जांच की। सितंबर 2006 से फरवरी 2007 तक का किराया 15.02.2007 को ही जमा किया गया था। मार्च 2007 से जुलाई 2007 तक का किराया 31.05.2007 को दि.कि.नि. अधिनियम की धारा 27 के तहत जमा किया गया था। अगस्त, 2007 से जनवरी, 2008 तक का किराया दिनांक 01.08.2007 को डी.आर. सं. 670/06

के माध्यम से जमा किया गया था। अधिनियम की धारा 15(2) के तहत पारित आदेश होने के बावजूद, याचिकाकर्ता किराया जमा करने के लिए अधिनियम की धारा 27 का सहारा ले रहा था। इसे उस न्यायालय में जमा नहीं किया जा रहा था जिसने अधिनियम की धारा 15(2) के तहत आदेश पारित किया था। विद्वान दि.कि.नि. ने यह भी देखा कि अगस्त, 2007 का किराया सितंबर, 2007 से जनवरी, 2008 की अवधि के किराए के साथ 01.10.2007 को ही जमा किया गया था। याचिकाकर्ता द्वारा भरोसा किए गए निर्णयों पर विचार करने के बाद न्यायालय ने पाया कि याचिकाकर्ता द्वारा इस निष्कर्ष पर पहुँचने का कोई कारण नहीं बताया गया है कि धारा 15(2) के तहत आदेश का गैर-अनुपालन अनजाने में हुआ था। न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि याचिकाकर्ता द्वारा की गई चूक धृष्टतापूर्ण और जानबूझकर की गई थी, जिसके परिणामस्वरूप, धारा 1(7) के तहत आवेदन को अनुमति दी गई और याचिकाकर्ता के बचाव को रद्द कर दिया गया। न्यायालय ने याचिकाकर्ता के दिनांक 03.04.2008 के आवेदन को खारिज कर दिया।

7. याचिकाकर्ता की अपील को खारिज करते हुए, विद्वान न्यायाधिकरण ने यह पाया कि केवल अपील के साथ, वकील के क्लर्क रवि द्वारा याचिकाकर्ता को कथित रूप से सौंपे गए चालान की एक प्रति, जिसे कथित रूप से किराया जमा करने की रसीद माना जाता है, याचिकाकर्ता के रुख के समर्थन में वकील के शपथ पत्र के साथ दायर की गई थी। यहां तक कि क्लर्क रवि के खिलाफ डीडी

रिपोर्ट (प्रथम सूचना रिपोर्ट नहीं), अपील दायर करने के बाद 16.05.2008 को दर्ज की गई थी। न्यायाधिकरण ने अभिनिर्धारित किया कि याचिकाकर्ता द्वारा पुलिस शिकायत दर्ज नहीं करने का कारण, कि क्लर्क का पता उपलब्ध नहीं था, स्वीकार नहीं किया जा सकता है क्योंकि पुलिस शिकायत दर्ज करने में समर्थ होने के लिए क्लर्क का सटीक पता होना आवश्यक नहीं था। यह देखा गया कि यदि याचिकाकर्ता द्वारा लिए गए रुख में कोई सच्चाई होती, तो धोखाधड़ी का पता चलने के तुरंत बाद, याचिकाकर्ता और उसके अधिवक्ता द्वारा क्लर्क के खिलाफ कार्रवाई की जाती। यह उस वकील से अपेक्षित था जो कानूनी बिरादरी से संबंधित है और इस प्रकार अपने दम पर प्राथमिकी दर्ज करने में सक्षम है। न्यायाधिकरण ने इस तथ्य पर भी ध्यान दिया कि भले ही याचिकाकर्ता और उसके अधिवक्ता को धोखाधड़ी के बारे में पता नहीं था, फिर भी कोई स्पष्टीकरण नहीं था कि 03.04.2008 तक कोई कदम क्यों नहीं उठाए गए, जब कि याचिकाकर्ता ने देरी को माफ करने के लिए आवेदन दायर किया था, भले ही प्रत्यर्थी ने अधिनियम की धारा 15(7) के तहत 01.06.2007 को आवेदन दायर किया था। इससे पता चलता है कि लगभग 10 महीनों तक, धारा 15(7) के तहत विशेष रूप से तीन महीने तक किराया का भुगतान/जमा नहीं करने का आरोप लगाने वाले आवेदन के नोटिस में रखे जाने के बावजूद, याचिकाकर्ता ने इस संबंध में कोई चिंता नहीं की। न्यायाधिकरण ने पाया कि डीडी रिपोर्ट, जो 12.05.2008 को अपील दायर करने के बाद 16.05.2008 को दर्ज की गई थी,

याचिकाकर्ता द्वारा दिए गए स्पष्टीकरण में केवल एक कमी को भरने का प्रयास प्रतीत होता है।

8. न्यायाधिकरण ने इस कारण की भी जांच की कि याचिकाकर्ता ने ऐसा क्यों किया था कि दि.कि.नि. अधिनियम की धारा 27 के तहत एक भुगतान किया, न कि सीधे बेदखली याचिका से निपटने वाले न्यायालय में। न्यायाधिकरण ने रिकॉर्ड में पाया कि याचिकाकर्ता ने फरवरी, मार्च, अप्रैल और मई, 2006 के लिए किराया जमा करने की अनुमति के लिए 13.03.2006 को एक आवेदन दायर किया था, क्योंकि उसने कहा था कि उसे इलाज के लिए बॉम्बे जाना था। विद्वान अ.कि.नि. द्वारा उक्त आवेदन को इस टिप्पणी के साथ निस्तारित किया गया कि किराए को पक्षों के अधिकारों और दलीलों के प्रति पूर्वग्रह के बिना जमा किया जाए। लेकिन उस तारीख को किराया जमा नहीं किया गया था। इसके बाद, याचिकाकर्ता ने अधिनियम की धारा 27 के तहत कार्यवाही का सहारा लिया क्योंकि वह न्यायालय के निर्देशों के अनुसार फरवरी, मार्च और अप्रैल, 2006 के महीनों का किराया समय पर जमा करने में विफल रही थी। धारा 27 के तहत किराया जमा करने के लिए आवेदन 10.04.2006 को इस दलील पर दायर किया गया था कि प्रत्यर्थी मकान मालिक ने व्यक्तिगत रूप से या मनी ऑर्डर के माध्यम से दिए गए किराए को प्रतिग्रहण करने से इनकार कर दिया था। इस आवेदन के द्वारा दिनांक 18.05.2006 को दि.कि.नि. अधिनियम की धारा 27 के तहत फरवरी, 2006 से मई, 2006 की अवधि के लिए 8,000/- रुपये का किराया

न्यायालय में जमा किया गया था। सम्बद्ध रूप से, याचिकाकर्ता को तीन अवसर दिए जाने के बावजूद मकान मालकिन को इस आवेदन का नोटिस जारी नहीं किया गया था। आखिरकार, 31.08.2007 को गैर-अभियोजन के कारण आवेदन खारिज कर दिया गया। इसलिए, न्यायाधिकरण ने निष्कर्ष निकाला कि धारा 27 के तहत जमा की गई राशि कानूनी रूप से नहीं की गई थी। न्यायाधिकरण ने अभिनिर्धारित किया कि याचिकाकर्ता के आचरण से यह स्पष्ट था कि उपरोक्त अवधि के लिए किराया जमा करने में देरी धृष्टतापूर्ण और जानबूझकर थी। न्यायाधिकरण ने ***मरगाथम्मल बनाम कमलम्मल*** (2006) 8 एस.सी.सी. 152 के निम्नलिखित उद्धरण पर भरोसा कियाः

> "14. हम कोई कारण नहीं देखते हैं कि प्रत्यर्थी ने 21.11.95 को देरी से अनुसूची दर्ज की, यानी 22.11.95 से ठीक एक दिन पहले, जिस तारीख तक उसे धारा 11 के तहत संपूर्ण स्वीकृत बकाया न्यायालय में जमा करने का निर्देश दिया गया था। प्रत्यर्थी यह अनुसूची दिनांक 09.11.95 के आदेश के अगले दिन यानी 10.11.95 को या उसके एक या दो दिन के भीतर दर्ज करा सकती थी। हमें कोई कारण नहीं दिखता कि उसने 22.11.95 की पूर्व संध्या तक इंतज़ार क्यों किया, जो न्यायालय में किराया जमा करने की आखरी तारीख थी। यह स्वीकार किया जाता है कि प्रत्यर्थी किरायेदार जानबूझकर किराया देय होने पर भुगतान करने से बचता रहा है। इस प्रकार, हम मद्रास उच्च न्यायालय द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोण से सम्मानपूर्वक असहमत हैं और हम किराया नियंत्रक के दिनांक 09.11.95 और 22.3.96 के आदेशों को बरकरार रखते हैं। उच्च न्यायालय के आक्षेपित निर्णय को अपास्त कर दिया जाता है और प्रत्यर्थी किरायेदार को विचाराधीन परिसर खाली करने के लिए दो महीने का समय दिया जाता है,

जिसमें विफल रहने पर उसे पुलिस बल द्वारा बेदखल कर दिया जाएगा।"

9. मुझसे पहले याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने प्रस्तुत किया है कि किराया जमा करने में चूक और देरी न तो जानबूझकर की गई थी और न ही धृष्टतापूर्ण थी। उसने अपनी प्रस्तुतियों के संबंध में निम्नलिखित निर्णयों पर भरोसा करने की माँग की है।

10. वह निम्नलिखित निर्णयों का उल्लेख करती हैः-

((i) ***जे. जेरमन्स बनाम अलियामल और अन्य*** 1999 (7) एस.सी.सी. 382;

(ii) ***संतोष मेहता बनाम ओम प्रकाश*** 1980 (1) ए.आई.आर.सी.जे. 697;

(iii) ***वतन मल बनाम कैलाश नाथ*** 1989 (2) ए.आई.आर.सी.जे. 683;

((iv) ***एरियाना अफगान एयरलाइंस कंपनी लिमिटेड बनाम साइकिल उपकरण,***

1979 (1) ए.आई.आर.सी.जे. 58;

(v) ***स्वामी रतनबाबू बनाम वामनराव शंकरराव देशमुख*** 1996(1) ए.आई.आर.सी.जे. 17;

(vi) ***बीबी अमना खातून और अन्य बनाम ज़हीर हुसैन और अन्य*** 1981 (1)

ए.आई.आर.सी.जे 426;

(vii) *हुकुम चंद बनाम मदन लाल* 1986 (1) आर.सी.आर. 284;

(viii) *बंदी शाह बनाम गंगौरी शाह* 1979 (1) ए.आई.आर.सी.जे. 563; और

(ix) *विजेंदर किशन गुप्ता और अन्य बनाम यूसुफ इंजीनियरिंग कंपनी प्राइवेट लिमिटेड और अन्य* 2008 (102) डी.आर.जे. 758।

11. किराया नियंत्रक के पास यह विवेकाधिकार है कि अधिनियम की धारा 15(2) के तहत पारित आदेश का पालन करने में विफलता के कारण दोषी किरायेदार के बचाव को रद्द किया जाए या नहीं। इस न्यायिक विवेकाधिकार का प्रयोग किराया नियंत्रक को उसके समक्ष मामले के तथ्यों की जांच करके किया जाना चाहिए, जिसके लिए किरायेदार द्वारा अपनी कथित विफलता के लिए दिए गए स्पष्टीकरण पर विचार करने की आवश्यकता होगी।

12. *एयरो ट्रेडर्स प्राइवेट लिमिटेड बनाम रविंदर कुमार सूरी* (2004) 8 एस.सी.सी. 307 में, सर्वोच्च न्यायालय ने अपने पूर्व निर्णय के आलोक में यह अभिनिर्धारित किया है कि अधिनियम की धारा 15(7) प्रत्यर्थी के बचाव को रद्द करने के लिए किराया नियंत्रक को विवेकाधीन शक्ति प्रदान करती है। उक्त शक्ति का प्रयोग मामले के तथ्यों पर ध्यान दिए बिना यंत्रवत रूप से नहीं किया जाना चाहिए। सर्वोच्च न्यायालय ने ब्लैक लॉ शब्दकोश से "न्यायिक विवेकाधिकार" के अर्थ को उद्धृत करते हुए कहा कि "परिस्थितियों के तहत उचित और कानून के नियमों और सिद्धांतों द्वारा निर्देशित न्यायाधीश या अदालत द्वारा निर्णय का

प्रयोग; जब कोई वादकारी अधिकार के मामले के रूप में कार्य की मांग करने का हकदार नहीं होता है तो कार्य करने या कार्य न करने की न्यायालय की शक्ति।" शब्द "विवेकाधिकार" अनिवार्य रूप से एक न्यायिक चरित्र के कार्य को दर्शाता है, और जैसा कि न्यायिक रूप से प्रयोग किए गए विवेकाधिकार के संदर्भ में उपयोग किया जाता है, इसका तात्पर्य एक कठोर नियम की अनुपस्थिति से है, और इसके लिए निर्णय के वास्तविक अभ्यास और तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार करने की आवश्यकता होती है जो एक ठोस, निष्पक्ष और न्यायपूर्ण निर्धारण करने के लिए आवश्यक हैं, और उन तथ्यों का ज्ञान है जिन पर विवेकाधिकार ठीक से काम कर सकता है। (27 कॉर्पस ज्यूरिस सेकंडम पृष्ठ 289 देखें)। जब यह कहा जाता है कि अधिकारियों के विवेक के भीतर कुछ किया जाना है, तो कुछ तर्क और न्याय के नियमों के अनुसार किया जाना चाहिए, न कि निजी राय के अनुसार; कानून के अनुसार और हास्य के अनुसार नहीं। यह केवल एक मंत्री या प्रशासनिक अधिकारी से अलग न्यायाधीश को उनके समक्ष लाए गए मामलों पर निर्णय लेने में कानून या अधिनियमों द्वारा दी गई कुछ छूट या स्वतंत्रता देता है।

13. विद्वान अ.कि.नि. और विद्वान किराया नियंत्रण न्यायाधिकरण ने याचिकाकर्ता किरायेदार के बचाव को रद्द करने के लिए अपने विवेक का प्रयोग करने के लिए विस्तृत कारण दिए हैं। मेरे विचार के लिए जो प्रश्न उठता है वह यह है कि क्या इस मामले के तथ्यों में यह कहा जा सकता है कि विद्वान अ.कि.नि. और विद्वान किराया नियंत्रण न्यायाधिकरण द्वारा उक्त विवेकाधिकार का प्रयोग गलत है, या

कानून के अनुसार नहीं है या वे अपनी अधिकारिता का प्रयोग करने में विफल रहे हैं।

14. मेरे विचार में, यहाँ ऊपर वर्णित तथ्यों को देखते हुए यह नहीं कहा जा सकता है कि निचली अदालतों द्वारा विवेकाधिकार का प्रयोग गलत, मनमाना है या वे अपनी अधिकारता का प्रयोग करने में विफल रहे हैं। माना जाता है कि अधिनियम की धारा 15(2) के तहत विद्वान अ.कि.नि. द्वारा पारित आदेश के बावजूद, याचिकाकर्ता द्वारा जून, जुलाई और अगस्त, 2006 के महीनों के लिए किराए का भुगतान/जमा नहीं किया गया था। याचिकाकर्ता का कहना था कि किराया अधिवक्ता श्री संजीव मेहता के क्लर्क, जिसका नाम रवि है, को दिया गया था, जिसका निचली अदालतों द्वारा विश्वास नहीं किया है। निचली अदालतों द्वारा दिए गए कारण स्पष्ट प्रतीत होते हैं और यह नहीं कहा जा सकता है कि वे प्रासंगिक विचारों पर आधारित नहीं हैं। सम्बद्ध रूप से, याचिकाकर्ता स्वयं अदालत में किराया जमा करती थी और यह केवल तीन महीने के संबंध में था, जिसमें ये दावा किया गया है कि किराया न्यायालय में जमा करने के लिए रवि नामक क्लर्क को दिया गया था। न्यायालय में किराया जमा नहीं किए जाने के तथ्य से अवगत होने के बावजूद (जब प्रत्यर्थी ने 01.06.2007 को अधिनियम की धारा 15 (7) के तहत आवेदन दायर किया था) याचिकाकर्ता या उसके अधिवक्ता द्वारा रवि नामक तथाकथित क्लर्क के खिलाफ 16.05.2008 तक कार्रवाई करने के लिए कोई कदम नहीं उठाया गया था। प्रत्यर्थी/मकान मालिक द्वारा दायर धारा 15(7) के तहत आवेदन की अनुमति दिए जाने के बाद ही कार्रवाई की गई थी और

किराए की जमा राशि की मांग करने के लिए याचिकाकर्ता के आवेदन को विद्वान अ.कि.नि. द्वारा खारिज कर दिया गया था, और 12.05.2008 को विद्वान किराया नियंत्रण न्यायाधिकरण के समक्ष अपील दायर किए जाने के बाद ही। अतीत में याचिकाकर्ता का आचरण किराया जमा करने के मामले में कुछ हद तक लापरवाह और अड़ियल रहा है। विद्वान अ.कि.नि. और विद्वान किराया नियंत्रण न्यायाधिकरण दोनों ने ऐसे विभिन्न उदाहरण निकाले हैं जब अलग-अलग अवधि के लिए किराए देर से जमा किए गए थे और अधिनियम की धारा 15 (2) के तहत पारित आदेश का उल्लंघन किया गया था। मैं ध्यान देता हूं कि विद्वान अ.कि.नि. के आदेश और इस संबंध में किराया नियंत्रण न्यायाधिकरण के आदेश में निहित तिथियों में कुछ मामूली विसंगतियां हैं। हालाँकि, मेरे सामने यह विवादित नहीं है कि संबंधित महीनों के लिए किराया जमा करने में देरी हुई थी। यहाँ तक कि विद्वान अ.कि.नि. द्वारा दर्ज की गई भुगतान की तारीखों को देखते हुए, जो याचिकाकर्ता के लिए अधिक अनुकूल हैं, यह स्पष्ट है कि सितंबर, 2006 से फरवरी, 2007 के महीनों के लिए किराया 15.02.2007 को जमा किया गया था और मार्च, 2007 से जुलाई 2007 के महीनों के लिए अधिनियम की धारा 27 के तहत 31.05.2007 को जमा किया गया था। जून, जुलाई और अगस्त, 2006 के महीनों के लिए किराए का भुगतान/जमा न करने के संबंध में धारा 15(7) के तहत प्रत्यर्थी द्वारा दायर आवेदन के बारे में जून, 2007 में जल्द से जल्द नोटिस दिए जाने के बावजूद, लगभग दस महीनों तक याचिकाकर्ता ने किराया जमा

करने के लिए कोई कदम नहीं उठाया और सिर्फ 03.04.2008 को ही याचिकाकर्ता ने किराया जमा करने में देरी की माफी मांगने के लिए आवेदन दायर किया। इसके अलावा, अधिनियम की धारा 27 के तहत फरवरी, मार्च, अप्रैल और मई, 2006 के महीनों के लिए भी किराया अनियमित रूप से जमा किया गया था और अधिनियम की धारा 15(2) के तहत आदेश का अनुपालन नहीं किया गया था। याचिकाकर्ता के आचरण के कारण उक्त किराया वास्तव में प्रत्यर्थी/मकान मालिक तक समय पर नहीं पहुंचा और प्रत्यर्थी को अधिनियम की धारा 27 के तहत न्यायालय में जमा किए जा रहे किराए के बारे में भी सूचित नहीं किया गया था। याचिकाकर्ता के आवेदन के जवाब में कि उसे इलाज के लिए बॉम्बे जाना है, विद्वान अ.कि.नि. के द्वारा शुरू में इन चार महीनों का किराया जमा करने का निर्देश दिया गया था। हालांकि ऐसा नहीं किया गया। इसके बाद याचिकाकर्ता ने फरवरी से मई, 2006 के महीनों के लिए किराया जमा करने के लिए 10.04.2006 को अधिनियम की धारा 27 के तहत कार्यवाही शुरू की। इन महीनों का किराया अधिनियम की धारा 27 के तहत 18.05.2006 को ही जमा किया गया था। बार-बार अवसर देने के बावजूद, प्रत्यर्थी/मकान मालिक को नोटिस जारी नहीं किया गया क्योंकि याचिकाकर्ता द्वारा कदम नहीं उठाए गए थे। अधिनियम की धारा 27 के तहत आवेदन को अंततः 31.08.2007 को गैर-अभियोजन के कारण खारिज कर दिया गया था। इन परिस्थितियों में, मेरे विचार में, विद्वत न्यायाधिकरण यह निष्कर्ष निकालने में पूरी तरह से उचित था कि

याचिकाकर्ता इन महीनों के लिए भी कानूनी तरीके से किराए का भुगतान/जमा करने में विफल रहा था। याचिकाकर्ता के इस तरह के आचरण के लिए कोई स्पष्टीकरण नहीं था और न्यायाधिकरण को यह निष्कर्ष निकालने के लिए दोषी नहीं ठहराया जा सकता है कि याचिकाकर्ता का आचरण धृष्टतापूर्ण और इरादतन था। ***शांति प्रसाद जैन (डी) एलआर द्वारा बनाम प्रकाश नारायण माथुर*** 158 (2009) डी.एल.टी. 483 में, किराए का भुगतान/जमा न करने के संबंध में इसी तरह का तर्क दिया गया था। उस मामले में यह दलील दी गई थी कि कानूनी सलाह पर याचिकाकर्ताओं ने किराए का भुगतान/जमा नहीं किया था। इस न्यायालय ने उक्त स्पष्टीकरण को खारिज कर दिया क्योंकि उस अधिवक्ता के खिलाफ कोई कार्रवाई नहीं की गई थी, जिसने अधिनियम की धारा 15(1) के तहत आदेश के अनुपालन में किराए के भुगतान/जमा के खिलाफ कथित रूप से सलाह देने का आरोप था। सर्वोच्च न्यायालय ने इस न्यायालय के दृष्टिकोण को बरकरार रखा।

15. मैं ***सरला गोयल और अन्य बनाम किशन चंद*** 2009 (9) स्केल 392 के मामले में सर्वोच्च न्यायालय के हालिया फैसले पर भी ध्यान देता हूँ। यह अधिनियम की धारा 14(2), धारा 15(1), धारा 15(7) और धारा 27 के साथ पठित धारा 14(1) (ए) के अनुप्रयोग से संबंधित मामला था। सर्वोच्च न्यायालय ने अधिनियम की धारा 27 में प्रयुक्त अभिव्यक्ति "हो सकता है" की व्याख्या "होगा" के रूप में की है। न्यायालय ने ***आत्मा राम बनाम शकुंतला रानी*** 2005 (7) एस.सी.सी. (1) में अपने पहले के निर्णय से निम्नलिखित उद्धरण उद्धृत किया:

"इस प्रकार यह प्रतीत होता है कि इस न्यायालय ने लगातार यह विचार रखा है कि किराया नियंत्रण विधानों में यदि किरायेदार अधिनियम के लाभकारी प्रावधानों का लाभ उठाना चाहता है, तो उसे अधिनियम की आवश्यकताओं का सख्ती से पालन करना होगा। यदि लाभ का दावा करने से पहले किसी पूर्ववर्ती शर्त को पूरा किया जाना है, तो उसे उस शर्त का सख्ती से पालन करना होगा। यदि वह ऐसा करने में विफल रहता है तो वह ऐसे प्रावधान द्वारा प्रदान किए गए लाभ नहीं उठा सकता है।"

16. आत्मा राम (पूर्वोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय ने आगे कहाः

"अतः अधिनियम में यह निर्धारित किया गया है कि यदि मकान मालिक निर्दिष्ट अवधि के भीतर उसके द्वारा दिया गया किराया प्रतिग्रहण नहीं करता है तो किरायेदार द्वारा क्या किया जाना चाहिए। उसे धारा 27 की उप-धारा (2) के अनुसार आवश्यक विवरण देते हुए किराया नियंत्रक के न्यायालय में किराया जमा करना आवश्यक है, इसलिए, एक विशिष्ट प्रावधान है जो ऐसी आकस्मिकता में अपनाई जाने वाली प्रक्रिया प्रदान करता है। अधिनियम के विशिष्ट प्रावधानों को देखते हुए किसी किरायेदार के लिए किसी अन्य प्रक्रिया का सहारा लेना संभव नहीं होगा। यदि किराया अधिनियम की धारा 27 के अनुसार किराया नियंत्रक के न्यायालय में जमा नहीं किया जाता है और कहीं और जमा किया जाता है, तो इसे अधिनियम के अर्थ के भीतर किराए के अवशिष्ट के वैध भुगतान/निविदा के रूप में नहीं माना जाएगा और इसके परिणामस्वरूप किरायेदार को डिफाल्टर माना जाना चाहिए।"

17. सर्वोच्च न्यायालय ने ***ई. पलानीसामी सामी बनाम पलानीसामी (डी) एल.आर. द्वारा और अन्य*** 2003 (1) एस.सी.सी. 123 में अपने पहले के निर्णयों से भी अंश उधृत किए थे, जिसमें यह देखा गया था:

> "किराया कानून आमतौर पर किरायेदारों के लाभ के लिए होता है। साथ ही, यह अच्छी तरह से तय किया गया है कि संबंधित कानूनों के माध्यम से किरायेदारों को प्रदान किए गए लाभ केवल वैधानिक प्रावधानों की सख्त क्षमता के आधार पर प्राप्त किए जा सकते हैं। ऐसे मामलों में न्यायसंगत विचार का कोई स्थान नहीं है। कानून में स्पष्ट प्रावधान शामिल हैं। यह विभिन्न कार्यों को निर्धारित करता है जो एक किरायेदार को लेने की आवश्यकता होती है। अधिनियम की धारा 8 में, किरायेदार द्वारा अपनाई जाने वाली प्रक्रिया क्रमशः दी गई है। एक प्रारंभिक चरण अगले चरण के लिए एक पूर्व शर्त है। किरायेदार को कानून में निर्धारित प्रक्रिया का पालन करना होगा। प्रक्रिया का सख्ती से अनुपालन आवश्यक है। किरायेदार सीधे अंतिम चरण यानी न्यायालय में किराया जमा करने के लिए नहीं जा सकता है। अंतिम कदम किरायेदार द्वारा पहले उठाए गए कदमों के बाद ही आ सकता है। **कुलदिप सिंह बनाम गणपत लाल और अन्य** 1996 (1) एस.सी.सी. 243 और एम. भास्कर बनाम न्या. वेंकटरामा नायडू 1996 (6) एस.सी.सी. 228 मामले में, हम इस न्यायालय के निर्णयों से दृढ़ीकृत है.....
>
> 8. माना गया है कि किरायेदार ने धारा 8 के तहत निर्धारित प्रक्रिया का पालन नहीं किया। अपीलकर्ता की ओर से केवल यह निवेदन किया गया था कि चूंकि किराया जमा किया जा चुका है, इसलिए एक उदार दृष्टिकोण अपनाया जाना चाहिए। हम इस बात से सहमत

नहीं हो सकते। अपीलकर्ता धारा 8 में निहित शर्तों को पूरा करने में विफल रहा। मकान मालिक द्वारा किराया प्राप्त करने से इनकार करने से पहले की उप-धाराओं यानी धारा 8 की उप-धारा (2), (3) और (4) में निहित प्रक्रिया का पालन किए बिना अधिनियम की धारा 8(5) को सीधे लागू करने में किरायेदार की कार्रवाई को उचित नहीं ठहराया जा सकता है। इसलिए, हमारा सुविचारित विचार है कि किराए के अवशिष्ट भुगतान में चूक के आधार पर वाद परिसर के संबंध में अपीलकर्ता के खिलाफ पारित बेदखली आदेश में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है।"

18. हालांकि ***सरला गोयल*** (पूर्वोक्त) अधिनियम की धारा 15(7) के साथ पठित धारा 15 (2) के तहत आने वाले मामले को सीधे तौर पर नहीं देखा गया, लेकिन यह मामला अधिनियम की धारा 14(1)(ए) के साथ पठित धारा 14(2), 15(1) और 27 के अंतर्गत आता है, ध्यान देने योग्य बात यह है कि सर्वोच्च न्यायालय ने लाभकारी किराया नियंत्रण कानून के संरक्षण की मांग करने वाले किरायेदार द्वारा किराए के भुगतान/जमा के मामले में सख्त अनुशासन लागू करने की मांग की है।

19. अब मैं याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता द्वारा उद्धृत विभिन्न निर्णयों पर विचार करने के लिए आगे बढ़ता हूँ। ***जे. जर्मोन*** (पूर्वोक्त) में किराए के भुगतान में चूक कर वसूली अधिकारी के निषेधात्मक आदेश के कारण हुई थी, जिसमें मकान मालिक को किराया नहीं देने का निर्देश दिया गया था, जिसे उस प्राधिकरण के अगले

आदेश तक किराया प्राप्त करने से भी रोक दिया गया था। उन निषेधात्मक आदेशों के आलोक में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि यदि किरायेदार के पास यह विश्वास करने के लिए उचित आधार हैं कि इस वैधानिक बाध्यता के कारण उसे किराए का भुगतान करने से प्रतिबंधित किया गया और रोका गया था। इन परिस्थितियों में न्यायालय ने कहा कि यह नहीं कहा जा सकता है कि किरायेदार ने किराए के भुगतान में जानबूझकर चूक की थी। इस मामले के तथ्य मौजूदा तथ्यों से भौतिक रूप से भिन्न हैं।

20. ***सुश्री संतोष मेहता*** (पूर्वोक्त) मामले में न्यायालय ने, इस तथ्य के आलोक में कि पहले किरायेदार द्वारा किराए के सभी बकाया का भुगतान उसके अधिवक्ता को चेक या नकद में किया गया था; अधिवक्ता द्वारा प्राप्त राशि न्यायालय या मकान मालिक को जमा नहीं की गई थी; दिल्ली बार काउंसिल को शिकायत की गई थी, जिस क्षण उसे अधिवक्ता की धोखाधड़ी के बारे में पता चला, उसने यह विचार रखा कि किरायेदार को किराए का भुगतान करने में विफल नहीं कहा जा सकता है। न्यायालय ने निष्कर्ष निकाला कि किरायेदार ने वह सब किया था जो वह कर सकती थी। वर्तमान याचिकाकर्ता के बारे में ऐसा नहीं कहा जा सकता है। इस मामले के तथ्य भी मौजूदा तथ्यों से भौतिक रूप से भिन्न हैं।

21. ***वतन मल*** (पूर्वोक्त) में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा कि केवल इसलिए कि लंबे समय तक (उस मामले में आठ साल) किराए के भुगतान/जमा में कुछ देरी या चूक हुई थी, यह नहीं कहा जा सकता है कि किरायेदार द्वारा जानबूझकर चूक की गई थी। उस मामले में सर्वोच्च न्यायालय राजस्थान परिसर (किराया और

बेदखली नियंत्रण) अधिनियम, 1950 की धारा 13क की व्याख्या से संबंधित था और सर्वोच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि किरायेदार को धारा 13क के लाभ से वंचित नहीं किया जाएगा क्योंकि इस धारा को उस अध्यादेश की प्रख्यापना की तारीख को लंबित मुकदमों और अन्य कार्यवाहियों के संबंध में अध्यारोही प्रभाव दिया गया है, जिसके तहत धारा 13क को लागू किया गया था। उपरोक्त अधिनियम की धारा 13क की भाषा दिल्ली किराया नियंत्रण अधिनियम की धारा 15 में निहित प्रावधानों से भौतिक रूप से भिन्न है। इसके अलावा, तथ्यों में भी ***वतन मल*** (पूर्वोक्त) की स्थिति मेरे समक्ष स्थिति से भौतिक रूप से भिन्न है। इसलिए, मेरा विचार है कि इस निर्णय की वर्तमान मामले के तथ्यों में कोई प्रासंगिकता नहीं है।

22. ***एरियन अफगान एयरलाइंस*** (पूर्वोक्त) में, बकाया किराए के भुगतान में चूक का कारण आदेश में कुछ अस्पष्टता थी। न्यायालय ने इस बात पर विचार करने के बाद कि किरायेदार ने बहुत बड़ी राशि जमा की थी और चूक आदेश के तुलनात्मक रूप से छोटे हिस्से तक ही सीमित थी जिसमें अस्पष्टता थी, यह अभिनिर्धारित किया गया कि इन परिस्थितियों में, किरायेदार को इस तरह के आचरण का दोषी नहीं कहा जा सकता है जो अधिनियम की धारा 15(7) में दिए गए अत्यधिक दंड को लागू किया जा सके। हालाँकि, वर्तमान मामले में अधिनियम की धारा 15(2) के तहत पारित आदेश में ऐसी कोई अस्पष्टता नहीं

है, जिससे यह कहा जा सके कि अपीलकर्ता के मन में कोई भ्रम पैदा हुआ है। भुगतान में चूक के लिए पूरी तरह से याचिकाकर्ता जिम्मेदार है।

23. ***रतनबाबू*** (पूर्वोक्त) मामले में न्यायालय ने इन तथ्यों के आलोक में कि मकान मालिक को पहले अनियमित अंतराल पर किराया मिलता रहा है और कभी भी विलंबित रूप से भुगतान किए गए किराए की प्राप्ति के खिलाफ विरोध नहीं किया, इस निष्कर्ष पर पहुंची कि हालांकि किरायेदार नियमित रूप से मासिक किराए का भुगतान करने के लिए बाध्य है, लेकिन आचरण के अनुसार इसके विपरीत एक अनुबंध है कि अनियमित अंतराल पर भुगतान किया गया किराया किराए के भुगतान में आभ्यासिक चूक नहीं होगा। ***रतनबाबू*** (पूर्वोक्त) में, तथ्य मौजूदा मामले से भौतिक रूप से भिन्न हैं क्योंकि मकान मालिक का कभी भी किराए के विलंबित भुगतान को माफ करने का कोई इरादा नहीं था और प्रत्यर्थी ने किराए के भुगतान में चूक के लिए बेदखली का मुकदमा दायर किया था। अतः यह मामला अपीलकर्ता के मामले को आगे नहीं बढ़ाता है। इसके अलावा, पक्षकारों की ओर से किसी भी पिछले नियमित आचरण को स्थापित करने के लिए इस आशय का कोई अनुरोध प्रतीत नहीं होता है।

24. ***हुकुम चंद*** (पूर्वोक्त) में, किरायेदार ने फरवरी और मार्च के महीनों के किराए के साथ बकाया किराए का भुगतान किया था। इन तथ्यों के आलोक में, न्यायालय का विचार था कि मकान मालिक को न्यायालय 20.04.1981 द्वारा निर्धारित विलंबित भुगतान को स्वीकार करके किराए के भुगतान में चूक को अधित्यजित कर

दिया जाना चाहिए। अगले ही दिन मकान मालिक ने राजस्थान परिसर (किराया बेदखली नियंत्रण) अधिनियम, 1950 की धारा 13 (ध) के तहत बकाया राशि स्वीकार करने के बाद किरायेदार के बचाव के लिए एक आवेदन दायर किया। वर्तमान मामले में धारा 15(7) के तहत प्रत्यर्थी द्वारा दायर आवेदन चूक किए गए महीनों के लिए किराया स्वीकार करने से पहले दायर किया गया था। वास्तव में, याचिकाकर्ता द्वारा चूक किए गए महीनों के लिए किराए की कोई निविदा नहीं थी। नतीजतन, प्रत्यर्थी द्वारा इसे स्वीकार करने का कोई सवाल ही नहीं था। इसलिए इस निर्णय का इस मामले के तथ्यों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है।

25. इसी तरह ***बंदी शाह*** (पूर्वोक्त) में अधित्यजन का सिद्धांत लागू किया गया था। इस मामले में मकान मालिक ने समय पर किराए का भुगतान न करने के कारण बचाव पक्ष को बर्खास्त करने के लिए एक आवेदन दायर किया था। इसके बाद मकान मालिक ने किरायेदार द्वारा जमा किए गए किराए को वापस लेने के लिए आवेदन किया। इन परिस्थितियों में न्यायालय का विचार था कि मकान मालिक द्वारा उसके अधिकारों में छूट दी गई थी क्योंकि उसने स्वयं किरायेदार द्वारा चूक की गई अवधि के लिए जमा किए गए किराए को वापस लेने के लिए आवेदन किया था। ***हुकुम चंद*** (पूर्वोक्त) और ***बंदी शाह*** (पूर्वोक्त) दोनों में तथ्य मौजूदा मामले से भौतिक रूप से भिन्न हैं और आवेदनकर्ता के कारण का समर्थन नहीं करते हैं।

26. ***विजेंद्र किशन गुप्ता*** (पूर्वोक्त) ने भी याचिकाकर्ता की कोई सहायता नहीं की है, क्योंकि यह दिल्ली किराया नियंत्रण अधिनियम के तहत मामला नहीं था। इसके अलावा, इस निर्णय से इस आशय का कोई अनुपात स्पष्ट नहीं है कि जब भी किरायेदार किराए के भुगतान में चूक करता है तो किरायेदार किराया जमा करने के लिए न्यायालय द्वारा अतिरिक्त समय दिए जाने का हकदार है।

27. परिणामस्वरुप, मेरा मानना है कि इनमें से कोई भी निर्णय याचिकाकर्ता को सहायता प्रदान नहीं करता है। विद्वान अतिरिक्त किराया नियंत्रक और विद्वान किराया नियंत्रण न्यायाधिकरण ने प्रासंगिक तथ्यों पर विचार करके और सही सिद्धांतों को लागू करके नियमित रूप से उनमें निहित न्यायिक विवेक का प्रयोग किया है। मुझे आक्षेपित आदेशों में कोई कमजोरी नहीं मिलती है। तदनुसार, मैं इस याचिका को खारिज करता हूं।

(विपिन सांघी)

न्यायाधीश

10 सितंबर, 2009

एएस/आरएसके/डीपी

(Translation has been done through AI Tool: SUVAS)

अस्वीकरण : *देशी भाषा में निर्णय का अनुवाद मुकद्दमेबाज़ के सीमित प्रयोग हेतु किया गया है ताकि वो अपनी भाषा में इसे समझ सकें एवं यह किसी अन्य प्रयोजन हेतु प्रयोग नहीं किया जाएगा| समस्त कार्यालयी एवं व्यावहारिक प्रयोजनों हेतु निर्णय का अंग्रेज़ी स्वरूप ही अभिप्रमाणित माना जाएगा और कार्यान्वयन तथा लागू किए जाने हेतु उसे ही वरीयता दी जाएगी।*